S. S. college, Jehanabad
class – B.A Part I (Hons.)
Subject :– Psychology Paper – I
Teacher's Name – Dr. Viveka Nand Sharma
Date :– 10.08.2020

Topic – Thinking

Central and peripheral theories of Thinking.

मनोविज्ञान के क्षेत्र में चिंतन प्रक्रिया सभी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में अत्यंत महत्वपूर्ण प्रक्रिया मानी जाती है क्योंकि चिंतन प्रायः सभी मनोवैज्ञानिक क्रिया ~~के~~ का किसी-न-किसी रूप में निर्धारक माना जाता है। सामान्यतः चिंतन से तात्पर्य एक ऐसी आंतरिक मानसिक प्रक्रिया से है जिसकी शुरुआत समस्या के साथ होती है और समस्या का समाधान हो जाने के साथ ही इसका अंत हो जाता है। इसलिए चिंतन को समस्या समाधान प्रक्रिया भी कहा जाता है। मनोवैज्ञानिकों के बीच इस बात में लेकर मतभेद है कि समस्या उत्पन्न होने और उसके समाधान के बीच कौन-कौन सी शारीरिक प्रक्रियाएँ सम्मिलित रहती हैं। इस संबंध में दो दृष्टिकोणों या दो प्रकार के सिद्धान्त देखने को मिलते हैं –

① केन्द्रीय सिद्धान्त (Central Theory)
② परिधीय सिद्धान्त (Peripheral Theory)

चिंतन के उपर्युक्त दोनों प्रकार के सिद्धान्तों की संक्षिप्त व्याख्या करने के पश्चात यह देखने का प्रयास करेंगे कि चिंतन का कौन-सा सिद्धान्त शारीरिक प्रक्रियाओं के बारे में संतोषजनक व्याख्या प्रस्तुत करता है।

चिंतन का केन्द्रीय सिद्धान्त (Central Theory) सबसे पुराना सिद्धान्त है और यह मस्तिष्क को ही चिंतन का आधार मानता है। चिंतन के इस सिद्धान्त का विकास संरचनावादी मनोवैज्ञानिकों तथा गेस्टाल्ट मनोवैज्ञानिकों की विचारधाराओं की पृष्ठभूमि में किया गया। संरचनावादियों ने चिंतन में अन्तः निरीक्षण को महत्व देते हुए यह बतलाया कि चिंतन वास्तव में एक केन्द्रीय प्रक्रिया है। इसी तरह गेस्टाल्टवादियों ने चिंतन को मस्तिष्क का एक केन्द्रीय व्यापार माना और इसमें सूझ को विशेष महत्व दिया है। इन दोनों विचारधाराओं के आलोक में केन्द्रीय सिद्धान्त यह बतलाता है कि चिंतन सम्बन्धी सभी क्रियाएँ पूर्णरूपेण मस्तिष्क के अन्दर होती हैं और चिंतन की प्रक्रिया में अन्य शारीरिक क्रियाओं का कोई योगदान नहीं होता। [illegible] वातावरण की उत्तेजना से स्नायु प्रवाह पैदा होता है और

यह आवेग प्रवाह संवेदी आवेग के माध्यम से Cortex में पहुँचता है जहाँ आन्तरिक क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती है। साथ ही Cortex के सहचारी क्षेत्र में क्रियाएँ प्रारम्भ हो जाती हैं और इन क्रियाओं के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार तथा प्रत्ययों प्रकट होने लगती है। प्रत्यय तथा प्रतीक के सहारे से विचार तथा प्रतिमायें सुसंगठित होने लगती है। इसी प्रक्रिया के बीच प्राणी किसी समाधान पर पहुँच जाता है और वह मानसिक स्तर पर समाधान करने के लिए तत्पर हो जाता है। यह तत्परता उसके अपवाही तंत्रिका को प्रभावित करती है फलस्वरूप प्राणी कोई प्रतिक्रिया या अनुक्रिया करता है। अतः केन्द्रीय सिद्धान्त के अनुसार समस्या की अनुभूति और उसके समाधान-वाली क्रियाएँ मस्तिष्क में होती हैं।

इस तरह केन्द्रीय सिद्धान्त के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि इस सिद्धान्त में केन्द्रीय संरचनाओं को चिन्तन का आधार माना गया है जो बहुत हद तक सही जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त अमूर्त चिन्तन की व्याख्या करने में भी परिधीय सिद्धान्त की अपेक्षा अधिक सफल है (Vinacke, 1952)। लेकिन कुछ मनोवैज्ञानिकों ने कुछ पहलुओं पर इस सिद्धान्त की आलोचना की है जो इस प्रकार हैं:—

(i) केन्द्रीय सिद्धान्त का सबसे बड़ा दोष यह है कि इस सिद्धान्त में चिन्तन के समय पेशीय क्रियाओं के महत्व को स्वीकार नहीं किया गया है जबकि अध्ययनों से यह साबित हो गया है कि चिन्तन में पेशीय क्रियाएँ होती हैं (Davis, 1938; Freeman, 1939)।

(ii) केन्द्रीय सिद्धान्त के अनुसार चिन्तन के लिए भाषा आवश्यक नहीं है जबकि अनेक अध्ययनों से यह साबित हो गया है कि भाषा की उपस्थिति में चिन्तन प्रक्रिया सरल हो जाती है (Brain, 1963; Atkinson et al., 1998)।

(iii) केन्द्रीय सिद्धान्त के विरुद्ध एक आपत्ति यह उठाई जाती है कि इसके पक्ष में प्रयोगात्मक प्रमाणों की कमी है क्योंकि यह पता नहीं चल पाता है कि चिन्तन का आधार cortex होता है तथा इसमें कौन-कौन सी संरचनाएँ सम्मिलित रहती हैं (Osgood, 1953)

(iv) केन्द्रीय सिद्धान्त के आधार पर मूर्त चिन्तन की व्याख्या थोड़ी कठिन है। इसका कारण यह है कि अमूर्त चिन्तन की अपेक्षा मूर्त चिन्तन में पेशीय क्रियाएँ अधिक होती हैं और इस तरह यह सिद्धान्त मूर्त चिन्तन की अपेक्षा अमूर्त चिन्तन की व्याख्या करने में अधिक सफल है (Vinacke, 1952)।

(v) विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह साबित हो गया है कि चिन्तन के समय प्राणियों में पेशीय क्रियाएँ होती पायी गई हैं जबकि यह सिद्धान्त चिन्तन में पेशीय क्रियाओं के महत्व को—

स्वीकार नहीं करता (Shaw, 1940; Thorax 1969)।

इस तरह उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केंद्रीय सिद्धांत काफी दोषपूर्ण है। फिर भी इन दोषों के बावजूद मनोवैज्ञानिकों एवं शरीरक्रियाविज्ञानियों के पास कोई ऐसा प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर इस सिद्धांत की परिकल्पनाओं को गलत साबित किया जा सके।

केंद्रीय सिद्धांत के प्रतिवादक होकर William James (1890) तथा Watson (1924) ने चिंतन के परिधीय सिद्धांत या पेशीय सिद्धांत का प्रतिपादन किया। इस सिद्धांत के अनुसार James मानते हैं कि उन्होंने चिंतन में केंद्रीय संरचना की भूमिका न देकर परिधीय संरचना पर अधिक जोर दिया है लेकिन इस सिद्धांत को एक व्यवस्थित रूप देने का श्रेय Watson को है जिन्होंने इस सिद्धांत की व्यवहारवादी व्याख्या प्रस्तुत की और चिंतन को मांसपेशी-ग्रंथीय व्यवहार के रूप में स्वीकार किया। इस सिद्धांत के अनुसार कोई मानसिक उत्तेजना होता है तो एक संवेदी आवेग पैदा होकर संवेदी स्नायु द्वारा Cortex में पहुँचता है फलस्वरूप Cortex में प्रत्यक्षीकरण की एक प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया के फलस्वरूप गत्यात्मक आवेग पैदा होकर किसी मांसपेशी तक पहुँच जाता है और संकुचन क्रिया उत्पन्न होती है। इस क्रिया के फलस्वरूप मांसपेशी विशेष उत्तेजित होकर संवेदी आवेग को जन्म देती है और यह आवेग Cortex में पुनः वापस चला जाता है। Cortex में संवेदी आवेग का आना और वहाँ से गत्यात्मक आवेगों को विभिन्न पेशियों में जाना उस समय तक चलता है जब तक समस्या का समाधान करने वाली क्रिया नहीं हो जाती है।

इस तरह उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केंद्रीय सिद्धांत चिंतन में केवल मस्तिष्क की प्रधानता को प्रधानता देता है जबकि परिधीय सिद्धांत पेशीय क्रियाओं को महत्वपूर्ण मानता है। परिधीय सिद्धांत स्वरयंत्र की क्रिया तथा अन्य शारीरिक क्रियाओं पर भी जोर देता है। वस्तुतः Watson ने कहा भी है कि चिंतन अवाचिक वाणी (Sub-vocal Speech) है लेकिन मनोवैज्ञानिकों ने Watson की आलोचना करते हुए यह बतलाया कि चिंतन शारीरिक एवं आंतरिक के अलावा एक अन्य आंतरिक क्रियाओं पर निर्भर करती है जिसमें केवल शरीर-पेशी एवं स्वरयंत्र की क्रिया भी शामिल है। Osgood (1953) ने भी अपने अध्ययनों में देखा कि परिधीय क्रियाओं के बिना चिंतन ~~सम~~ संभव नहीं है। Shaw (1940) ने भी अपने अध्ययन में देखा कि जब कभी प्रयोज्यों को किसी वस्तु के बारे में कल्पना करने को कहा गया तो उनके बाहों में EMG रिकॉर्ड किया गया। इस प्रकार उपलब्ध हुई जिस तरह वस्तु को वास्तव में उठाने से प्राप्त होती है। यह सब तथ्य स्पष्ट करता है कि चिंतन करने तथा वाक्-पेशि

स्वर से व्यक्त करने दोनों अवस्थाओं में होती है।

इस तरह परिधीय सिद्धान्त एवं केन्द्रीय सिद्धान्त के विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि केन्द्रीय सिद्धान्त की तुलना में इस सिद्धान्त के पक्ष में बहुत अधिक प्रमाण उपलब्ध है। इसके अलावा इस सिद्धान्त के आधार पर चिन्तन के विभिन्न mechanisms की व्याख्या अधिक ठीक ढंग से होती है (Vinacke, 1952)। कुछ ऐसे अध्ययनों द्वारा यह भी साबित हो चुका है कि चिन्तन और भाषा के बीच धनात्मक सहसम्बन्ध है और जैसे-जैसे भाषा विकसित होती जाती है चिन्तन भी अधिक कुशल होता है (Ray, 1953)। परिधीय सिद्धान्त के आधार पर हुई चिन्तन द्वारा अधिक उत्तम समाधान होता है क्योंकि इस प्रकार के चिन्तन में मांसपेशीय क्रियाएँ अधिक होती है (Boxton, 1981)

इससे स्पष्ट है कि यह सिद्धान्त केन्द्रीय सिद्धान्त की अपेक्षा चिन्तन एवं समस्या समाधान के बीच होनेवाली मानसिक प्रक्रियाओं की व्याख्या करने में काफी सफल रहा है। फिर भी इन गुणों के बावजूद मनोवैज्ञानिकों ने इस सिद्धान्त की आलोचना की है जो इस प्रकार है:—

(i) इस सिद्धान्त की आलोचना करते हुए Thomson (1925) तथा Morgan (1943) ने यह बतलाया कि चिन्तन या समस्या समाधान में हमेशा अनावश्यक प्रतिक्रियाएँ नहीं होती है। यह ठीक है कि चिन्तन में प्रायः अनावश्यक प्रतिक्रियाएँ होती है लेकिन हमेशा नहीं होती है।

(ii) यह सिद्धान्त अमूर्त चिन्तन की अपेक्षा मूर्त चिन्तन की व्याख्या करने में काफी सफल रहा है (Vinacke, 1952)।

(iii) कुछ मनोवैज्ञानिकों ने यह बतलाया कि इस सिद्धान्त में संवेदी क्रियाओं तथा मस्तिष्क को मांसपेशीय क्रियाओं की तुलना में बहुत ही कम महत्व दिया गया है।

(iv) चिन्तन के केन्द्रीय सिद्धान्त तथा परिधीय सिद्धान्त के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि कोई भी सिद्धान्त चिन्तन प्रक्रिया के कार्यों की व्याख्या करने में सफल नहीं है। फिर भी अधिकांश मनोवैज्ञानिकों का यह विचार है कि चिन्तन के सभी पहलुओं की व्याख्या दोनों सिद्धान्तों के बीच समन्वय करने से ही की जा सकती है और इस तरह से दोनों सिद्धान्त एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि पूरक है। इस संदर्भ में Osgood (1953) ने ठीक कहा है — "Perhaps the most reasonable view is a compromise: the development of symbolic process may require peripheral mediation which becomes telescoped to a largely central representation in the mature individual."